नईदुनिया

संपादकीय

सत्ताईस का सस्पेंस, कब मिलेगा ओबीसी को हक?

मध्यप्रदेश *में 27 प्रतिशत ओबीसी आरक्षण का मामला अब कानूनी लड़ाई से ज्यादा राजनीतिक फुटबॉल बन गया है। जबलपुर से आई ताजा खबर ने इस मामले को फिर चर्चा में ला दिया है। राज्य सरकार की विशेष अनुमति याचिका को सुप्रीम कोर्ट में नियमित नंबर मिल गया है। पहले रजिस्ट्री ने 13 तकनीकी खामियां निकाली थीं। पृष्ठ संख्या में गड़बड़ी, अस्पष्ट फोटोकॉपी, तारीखों का मेल न होना और जरूरी हस्ताक्षरों की कमी जैसी आपत्तियों को सरकार ने दूर कर दिया है। अब सुनवाई का रास्ता साफ बताया जा रहा है। लेकिन सवाल है कि रास्ता साफ होने से क्या मंजिल मिल गई? क्या ओबीसी वर्ग को उसका हक मिल गया? जवाब है नहीं। रास्ता खुला है, मंजिल अभी भी दूर है।*

कहानी 2019 से शुरू होती है, जब प्रदेश सरकार ने ओबीसी आरक्षण 14 से बढ़ाकर 27 प्रतिशत करने का फैसला किया था। अध्यादेश आया, अधिसूचना जारी हुई और युवाओं में उम्मीद जगी। लेकिन इस फैसले को हाईकोर्ट में चुनौती दी गई। नौ अक्टूबर को हाईकोर्ट ने 27 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान को असंवैधानिक ठहराते हुए 14 प्रतिशत को वैध माना। सरकार ने इस फैसले को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी, लेकिन तब से स्थिति जस की तस बनी हुई है। भर्तियां, परीक्षाओं के परिणाम, नियुक्तियां और मेडिकल प्रवेश तक कानूनी अनिश्चितता के घेरे में हैं। आखिर यह मामला कब तक अदालतों की चौखट पर फैसले का इंतजार करेगा?

इस मुद्दे पर राजनीति भी खूब हुई है। चुनाव आते ही हर दल ओबीसी का मसीहा बन जाता है। भाजपा कहती है कि वह 27 प्रतिशत आरक्षण की रक्षक है, कांग्रेस कहती है कि उसने ही 27 प्रतिशत आरक्षण दिया था। छोटे दल इससे भी आगे जाकर 50 प्रतिशत आरक्षण देने के वादे करते हैं। लेकिन चुनाव खत्म होते ही सब अदालत का हवाला देने लगते हैं। कहते हैं कि मामला कोर्ट में है, हम क्या करें? यह कैसा तमाशा है? हक जनता का, फैसला अदालत का और फायदा सियासत का। युवा पूछ रहे हैं कि जब वोट मांगना होता है तो नेता घर आते हैं, लेकिन जब हक देने की बारी आती है तो अदालत का रास्ता दिखा देते हैं।

इस पूरे विवाद का सबसे बड़ा नुकसान ओबीसी युवाओं को हो रहा है। सोचिए, जिस छात्र ने 2020 में परीक्षा दी थी, वह 2026 में भी नियुक्ति का इंतजार कर रहा है। उसकी उम्र निकल रही है, सपने टूट रहे हैं और परिवार आर्थिक तथा मानसिक दबाव झेल रहे हैं। गरीब परिवार का वह युवा, जिसने कोचिंग के लिए कर्ज लिया, आज भी अदालत की तारीखें देख रहा है। क्या यही सामाजिक न्याय है? आरक्षण का उद्देश्य पिछड़े वर्गों को आगे लाना है, लेकिन लंबी कानूनी अनिश्चितता उन्हें और पीछे धकेल रही है।

तथ्यात्मक रूप से देखें तो 27 प्रतिशत आरक्षण की लड़ाई केवल आंकड़ों की नहीं, प्रतिनिधित्व और हिस्सेदारी की भी है। इंद्रा साहनी मामले में सुप्रीम कोर्ट ने सामान्य परिस्थितियों में आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा का सिद्धांत निर्धारित किया था। मध्यप्रदेश में एससी और एसटी को मिलाकर पहले से 33 प्रतिशत आरक्षण है। ओबीसी को 27 प्रतिशत देने पर कुल आरक्षण 56 प्रतिशत हो जाता है। यही इस विवाद का प्रमुख कानूनी आधार है। सरकार का तर्क है कि प्रदेश में ओबीसी आबादी के अनुपात में आरक्षण जरूरी है। ऐसे में इस मामले में विस्तृत सुनवाई और स्पष्ट निर्णय आवश्यक है।

अब जरूरत है कि सभी राजनीतिक दल आरोप-प्रत्यारोप छोड़कर सर्वदलीय बैठक बुलाएं और युवाओं के भविष्य को प्राथमिकता दें। सुप्रीम कोर्ट से भी अपेक्षा है कि इस मामले को केवल एक कानूनी फाइल नहीं, बल्कि लाखों परिवारों के भविष्य का सवाल मानकर शीघ्र अंतिम सुनवाई करे। केवल याचिका को नंबर मिलना पर्याप्त नहीं है, फैसला भी मिलना चाहिए। आखिर कब तक युवा तारीखें गिनेंगे और ओबीसी वर्ग अपने हक का इंतजार करेगा?

आजकल

कुर्सी का नशा और कुर्सी के बाद का ज्ञान

भोपाल में इन दिनों अजीब नजारा है। जो अधिकारी कल तक सरकारी कुर्सी पर बैठकर शहर की किस्मत लिखते थे, आज वही मंचों से शहर की चिंता में भाषण दे रहे हैं। जो हाथ पश्चिमी बायपास जैसी योजनाओं पर दस्तखत कर रहे थे, वही अब पर्यावरण बचाने की अपील कर रहे हैं। सवाल है कि पद पर रहते हुए जनता की आवाज क्यों नहीं सुनी गई और पद से हटते ही शहर के लिए इतना ज्ञान कहां से आ गया? हुजूर विधायक रामेश्वर शर्मा ने इसी दोहरे रवैये पर सवाल उठाया है।

मास्टर प्लान 2047 के ड्राफ्ट पर 13,400 आपत्तियां आना सामान्य बात नहीं, बल्कि जनता के अविश्वास का संकेत है। दो सौ से अधिक लोग सुनवाई में पहुंचे। बुजुर्ग, महिलाएं और युवा सब अपने शहर को बचाने की गुहार लगा रहे हैं। सवाल यह है कि जब योजनाएं बनती हैं, तब जनता को विश्वास में क्यों नहीं लिया जाता? खेत पर बायपास और घर के सामने मार्केट स्ट्रीट घोषित होने की जानकारी लोगों को बाद में क्यों मिलती है?

विधायक ने पूर्व कमिश्नर पर पांच कॉलोनियों को नियम विरुद्ध अनुमति देने का आरोप लगाया। स्वामी विवेकानंद, गौरीशंकर और पतंजलि जैसी कॉलोनियों को व्यावसायिक बनाने के फैसलों पर सवाल उठाए। आज उन्हीं इलाकों में व्यावसायिक गतिविधियों पर रोक लगाने की बात हो रही है। सवाल है कि भोपाल की बदहाली के लिए जिम्मेदार कौन है? जनता या वे फैसले, जिन पर अधिकारियों ने कुर्सी पर रहते हुए दस्तखत किए थे? रिटायर्ड एडीजी पवन जैन का मार्केट स्ट्रीट प्रस्ताव वापस लेने का सुझाव भी महत्वपूर्ण है, लेकिन ऐसी चिंता फैसले लेने के समय क्यों नहीं दिखाई दी?

लोकतंत्र में अधिकारी जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के सहयोगी हैं, उनके विकल्प नहीं। जनप्रतिनिधियों की बात को नजरअंदाज करना लोकतांत्रिक व्यवस्था का अपमान है। अब जरूरत है कि बड़े प्रोजेक्ट में जनप्रतिनिधियों की राय अनिवार्य हो और जनता की आपत्तियों पर वास्तविक सुनवाई हो। 13 हजार से अधिक आपत्तियों का निपटारा औपचारिकता से नहीं हो सकता।

इक्यासी साल बाद फिर एक मंच पर तीन महाशक्तियाँ

परमाणु हथियारों से लेकर वैश्विक शक्ति संतुलन तक पांच मुद्दों पर रहेगी दुनिया की नजर

बीजिंग रूस-यूक्रेन युद्ध, ईरान में जारी संघर्ष और अमेरिका-चीन के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा के बीच दुनिया की तीन महाशक्तियों के नेता एक मंच पर आने जा रहे हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप, रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग 19 नवंबर को चीन के शेनझेन शहर में पहली बार त्रिपक्षीय शिखर बैठक करेंगे। मौजूदा वैश्विक परिस्थितियों और बदलती वैश्विक शक्ति व्यवस्था में इस मुलाकात को बेहद महत्वपूर्ण माना जा रहा है। करीब 81 साल पहले फरवरी 1945 में अमेरिका, ब्रिटेन और तत्कालीन सोवियत संघ ने याल्टा में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की दुनिया की व्यवस्था पर चर्चा की थी। इस बार फिर तीन नेता उसी तरह की चर्चा करने जा रहे हैं, लेकिन इस बार दुनिया ज्यादा खतरनाक और ज्यादा जटिल हो चुकी है।

इस बैठक का सबसे बड़ा संदर्भ है वर्ल्ड ऑर्डर यानी विश्व व्यवस्था में बदलाव। पहले अमेरिका अकेला सुपरपावर था, लेकिन अब चीन आर्थिक और सैन्य ताकत के रूप में अमेरिका को चुनौती दे रहा है। रूस यूक्रेन युद्ध के बाद फिर से अपनी सैन्य ताकत दिखा रहा है। ऐसे में यदि तीनों नेता एक साथ बैठते हैं तो यह केवल फोटो सेशन नहीं होगा, बल्कि यह तय करने वाली मुलाकात हो सकती है कि आने वाले दस साल तक दुनिया किस दिशा में जाएगी। क्या तीसरा विश्व युद्ध टलेगा? क्या परमाणु हथियारों की होड़ रुकेगी? क्या वैश्विक व्यापार फिर से पटरी पर आएगा? ये सभी सवाल इस बैठक से जुड़े हैं।

इन पांच मुद्दों पर दुनिया की नजर रहेगी। पहला मुद्दा है परमाणु हथियारों पर नियंत्रण। न्यू स्टार्ट संधि खत्म होने के बाद अमेरिका, रूस और चीन के बीच परमाणु हथियारों में कटौती पर चर्चा जरूरी हो गई है। कहा जा रहा है कि पहले अमेरिका और रूस के बीच ही परमाणु संतुलन था, लेकिन अब चीन भी तेजी से अपने परमाणु हथियार बढ़ा रहा है। यदि तीनों देशों में इस पर सहमति नहीं बनी तो दुनिया फिर से परमाणु हथियारों की अंधी दौड़ में चली जाएगी।

दूसरा मुद्दा है ईरान युद्ध और पश्चिम एशिया का संकट। ईरान और इजरायल के बीच तनाव, अमेरिका की भूमिका और रूस-चीन का ईरान को समर्थन, इस पूरे क्षेत्र को बारूद के ढेर पर बैठा चुका है। इस पर भी तीनों नेताओं के बीच तीखी बहस हो सकती है।



तीसरा मुद्दा है रूस-यूक्रेन युद्ध। पुतिन यह मुद्दा उठा सकते हैं, लेकिन ट्रंप के एजेंडे में इसे शामिल करने की संभावना कम है, क्योंकि ट्रंप इस युद्ध को खत्म करने का वादा कर चुके हैं। लेकिन चीन रूस का साथ दे रहा है, इसलिए यह मुद्दा टाला नहीं जा सकता।

चौथा मुद्दा है वैश्विक शक्ति संतुलन। बढ़ती रणनीतिक प्रतिस्पर्धा, आपसी अविश्वास को कम करना और व्यापारिक तनाव घटाना भी चर्चा के अहम विषय होंगे। ट्रंप ने चीन पर टैरिफ लगाया है और चीन ने भी जवाब दिया है। रूस पर प्रतिबंध लगे हैं। ऐसे में क्या कोई नया व्यापार समझौता बनेगा, यह देखना होगा।

पांचवां मुद्दा है नई तकनीक और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर नियंत्रण। कौन-सा देश एआई में आगे रहेगा, कौन चिप बनाएगा और कौन डेटा पर राज करेगा, यह भी एक छिपा हुआ एजेंडा है।

मुद्दों से ध्यान हटाने का मौका भी इस बैठक से जुड़ा एक पहलू है। मध्यावधि चुनावों में हार और घरेलू मुश्किलों से घिरे अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप का एशिया दौरा इन मुद्दों से ध्यान हटाने का भी एक मौका है। अमेरिका में महंगाई, बेरोजगारी और राजनीतिक ध्रुवीकरण बढ़ा है। ऐसे में यदि ट्रंप दुनिया के दो सबसे ताकतवर नेताओं के साथ बैठकर वैश्विक शांति का संदेश देते हैं तो उनकी घरेलू छवि सुधर सकती है। यही रणनीति पुतिन के लिए भी है। यूक्रेन युद्ध के कारण रूस पर लगे प्रतिबंधों से रूसी अर्थव्यवस्था दबाव में है। यदि पुतिन ट्रंप और शी के साथ बैठते हैं तो दुनिया को लगेगा कि रूस अकेला नहीं है। चीन के लिए भी यह खुद को शांतिदूत के रूप में पेश करने का मौका है। शी जिनपिंग चाहते हैं कि चीन को अमेरिका के बराबर की महाशक्ति माना जाए।

याल्टा सम्मेलन की याद और यूक्रेन की आशंका भी इस बैठक को खास बनाती है। फरवरी 1945 में अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ ने याल्टा में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की दुनिया की व्यवस्था पर चर्चा की थी। तब यह तय हुआ था कि कौन-सा देश किस क्षेत्र में प्रभाव रखेगा। उसी तर्ज पर आज भी यूक्रेन को डर है कि कहीं तीन महाशक्तियां मिलकर यूक्रेन का सौदा न कर दें। यूक्रेन को आशंका है कि ट्रंप, पुतिन और शी आपस में समझौता कर लेंगे और यूक्रेन को रूस के हवाले करने पर सहमति बन जाएगी। यही डर यूरोप को भी है। यूरोप नहीं चाहता कि उसकी सुरक्षा का फैसला उसकी अनुपस्थिति में हो जाए। इसलिए याल्टा की तुलना इस बैठक से की जा रही है और कहा जा रहा है कि इतिहास खुद को दोहरा रहा है।

भारत के लिए इस बैठक के क्या मायने हैं? भारत इस त्रिकोण में सीधे शामिल नहीं है, लेकिन इस बैठक का भारत पर सीधा असर पड़ेगा। यदि अमेरिका, रूस और चीन के बीच परमाणु समझौता होता है तो भारत को भी अपनी परमाणु नीति पर सोचना होगा। यदि रूस-यूक्रेन युद्ध रुकता है तो तेल के दाम गिरेंगे और भारत को फायदा होगा। यदि अमेरिका और चीन के बीच व्यापार समझौता होता है तो भारत के निर्यात पर असर पड़ेगा। सबसे बड़ी बात यह है कि भारत अब तक अमेरिका और रूस दोनों के साथ संतुलन बनाकर चल रहा है। चीन के साथ तनाव के बावजूद व्यापार कर रहा है। ऐसे में तीन महाशक्तियों की बैठक में भारत की भूमिका एक संतुलनकारी शक्ति के रूप में देखी जा रही है। दुनिया चाहती है कि भारत भी इस नई व्यवस्था में अपनी आवाज रखे।

क्या यह बैठक सफल होगी या फिर केवल एक फोटो सेशन बनकर रह जाएगी, यह कहना जल्दबाजी होगी, क्योंकि तीनों नेताओं के अपने-अपने अहंकार हैं। ट्रंप डील की बात करते हैं, पुतिन सुरक्षा की गारंटी चाहते हैं और शी सम्मान चाहते हैं। तीनों की विचारधाराएं अलग हैं, लेकिन मजबूरी एक है और वह है दुनिया को एक बड़े युद्ध से बचाना। आज दुनिया के पास बारह हजार से अधिक परमाणु हथियार हैं। एक चिंगारी पूरी दुनिया को खत्म कर सकती है। ऐसे में यदि तीनों नेता एक मंच पर आकर बातचीत भी कर लेते हैं तो यह भी बड़ी बात होगी। बातचीत से ही रास्ता निकलता है और यदि यह बैठक विफल भी होती है तो भी यह संदेश जाएगा कि बातचीत का दौर खत्म नहीं हुआ है।

इक्यासी साल बाद विश्व की तीन महाशक्तियों के नेताओं की होने वाली मुलाकात केवल एक बैठक नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक मोड़ है। फरवरी 1945 में याल्टा में दुनिया को बांटा गया था, नवंबर में शेनझेन में दुनिया को बचाने की कोशिश होगी। क्या यह कोशिश सफल होगी? क्या परमाणु हथियारों, ईरान युद्ध और वैश्विक शक्ति संतुलन पर ट्रंप, पुतिन और शी चर्चा करेंगे? क्या दुनिया फिर से एक नई व्यवस्था की तरफ जाएगी? इसका जवाब 19 नवंबर को मिलेगा, लेकिन इतना तय है कि इस बैठक पर पूरी दुनिया की नजर रहेगी, क्योंकि इस बैठक से तय होगा कि आने वाली सदी किसकी होगी, अमेरिका की, रूस की, चीन की या फिर तीनों की साझा जिम्मेदारी की।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

चार साल में एआई ने खा लीं 90 लाख नौकरियाँ

एक रिपोर्ट ने पूरी दुनिया के युवाओं की नींद उड़ा दी है। रिपोर्ट कहती है कि आने वाले चार साल में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस यानी एआई के कारण दुनिया भर में 90 लाख नौकरियां खत्म हो सकती हैं। यह आंकड़ा छोटा नहीं है। यह आंकड़ा एक देश की आबादी के बराबर है। नई दिल्ली। जेएनएन की एक रिपोर्ट के अनुसार, पिछले चार साल और 11 महीनों में ही कंपनियों ने लगभग 13 लाख पदों पर भर्ती नहीं की है, बल्कि कई पदों को खत्म भी कर दिया है। कंपनियों ने इसका खुलासा किया है। एक रिपोर्ट के मुताबिक, 2026 में 22 लाख नौकरियां खत्म होने का अनुमान है। इसका मतलब यह है कि एआई का सबसे ज्यादा असर पड़ने की आशंका जताई गई है। हालांकि, इस दौरान नई तरह की नौकरियां पैदा होने की उम्मीद भी है, लेकिन सवाल यह है कि क्या नई नौकरियां पुरानी नौकरियों की भरपाई कर पाएंगी?

आंकड़े बहुत डरावने हैं। 2022 में कंपनियों ने 1,064 कंपनियों में छंटनी की। 2023 में 1,194 कंपनियों में 2,65,660 लोगों की नौकरियां गईं। 2024 में 552 कंपनियों में 1,52,922 लोगों की नौकरियां गईं। 2025 में 278 कंपनियों में 1,22,606 नौकरियां गईं और 2026 में 354 कंपनियों में 1,44,171 नौकरियां गई हैं। इन वर्षों में टेक कंपनियों में ही लाखों लोगों की नौकरियां गई हैं। सबसे ज्यादा 2,65,660 नौकरियां 2023 में गईं। टेक कंपनियों में छंटनी के आंकड़े इस प्रकार हैं। बिजनेस और टेक्नोलॉजी इनसाइडर्स कंपनी गार्टनर की रिपोर्ट के मुताबिक, एआई की वजह से दुनिया भर में 90 लाख नौकरियां खत्म हो सकती हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि एआई से जुड़े व्यावसायिक फैसलों ने भर्ती के तरीकों को प्रभावित करना शुरू कर दिया है। रिपोर्ट के अनुसार, 2030 तक दुनिया भर में 0.4 प्रतिशत से 1.8 प्रतिशत कर्मचारियों को एआई के कारण नौकरी गंवानी पड़ सकती है। एआई के बढ़ते इस्तेमाल के चलते 2026 में 13 लाख पदों के सृजन और भर्ती को टाल दिया गया, जबकि 22 लाख नौकरियां खत्म हो गईं। उम्मीद है कि 2030 तक लगभग 50 लाख लोगों को भर्ती में देरी का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि कंपनियां नए पदों के सृजन को टाल रही हैं।

एआई आखिर नौकरियां खा क्यों रहा है? पहले एक काम करने के लिए दस लोग चाहिए होते थे,



अब वही काम एआई चुटकियों में कर देता है। पहले रिपोर्ट बनाने में दो दिन लगते थे, अब एआई दो मिनट में बना देता है। पहले कोड लिखने में हफ्ते लगते थे, अब एआई सेकंडों में लिख देता है। पहले कस्टमर केयर में सौ लोग बैठते थे, अब एक चैटबॉट ही सौ लोगों का काम कर देता है। कंपनियों को लगता है कि मशीन आदमी से सस्ती है। मशीन थकती नहीं है, मशीन छुट्टी नहीं मांगती और मशीन तनख्वाह बढ़ाने को नहीं कहती। इसलिए कंपनियां धीरे-धीरे आदमी को हटाकर मशीन को ला रही हैं। यह एक बिजनेस फैसला है, लेकिन इसके पीछे लाखों घरों का चूल्हा बुझ रहा है।

सबसे ज्यादा असर तीन क्षेत्रों पर पड़ेगा। पहला है टेक्नोलॉजी सेक्टर। इस क्षेत्र के लगभग 70 प्रतिशत कारोबार पर एआई का सीधा असर पड़ेगा। इसके बावजूद सबसे तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र यही रहेगा। यहां 19 लाख नई नौकरियां बनेंगी और चार लाख खत्म होंगी। यानी कुल 15 लाख नौकरियों का फायदा होगा। दूसरा है एसेट इंटेंसिव इंडस्ट्रीज। मैन्युफैक्चरिंग, एनर्जी और फिजिकल इंफ्रास्ट्रक्चर से जुड़े क्षेत्रों में सबसे बड़ा बदलाव होगा। यहां 60 लाख पुरानी नौकरियां खत्म होंगी, लेकिन 60 लाख नई नौकरियां पैदा होंगी। तीसरा है पब्लिक और सरकारी सेक्टर। सरकारें राजस्व बढ़ाने के बजाय कार्यकुशलता बढ़ाने और लागत कम करने पर ध्यान देंगी। इससे नौ लाख नौकरियां खत्म होंगी और केवल चार लाख नई नौकरियां पैदा होंगी। इसका अर्थ है कि एआई के बाद बनने वाली नई नौकरियों की संख्या और उनका स्वरूप रोजगार के बाजार को बदल देगा।

गार्टनर की रिपोर्ट में 2030 तक 90 लाख नौकरियां खत्म होने के साथ 1.6 करोड़ नई नौकरियां आने का अनुमान भी जताया गया है। लेकिन ये नई नौकरियां कौन-सी होंगी, यह समझना बहुत जरूरी है। गार्टनर की डिस्टिंग्विश्ड वाइस प्रेसिडेंट एनालिस्ट हेलेन पोइटविन ने कहा कि एआई अपनाने वाले संगठन इसे इंसानी श्रम के विकल्प के रूप में नहीं देखते। वे इसे कामकाज के तरीकों को नया रूप देने और बदलती बाजार स्थितियों में प्रतिस्पर्धा करने के लिए संतुलन बनाने के माध्यम के रूप में देखते हैं। गार्टनर के वाइस प्रेसिडेंट एनालिस्ट जॉन-डेविड लवलॉक के मुताबिक, इसका मतलब नौकरियां खत्म होना नहीं, बल्कि भर्तियों का टलना भी है। भर्तियों को टालने का मतलब नौकरियां खत्म होना नहीं है। यह एक तरह से नई नौकरियों का इंतजार है।

यहां हमें भारत के युवाओं के बारे में सोचना होगा। भारत में हर साल करोड़ों युवा नौकरी की तलाश में निकलते हैं। यदि एआई ने एंट्री लेवल की नौकरियां खत्म कर दीं तो युवा क्या करेगा? पहले कोडिंग सीखकर नौकरी मिल जाती थी, अब कोडिंग तो एआई ही कर देगा। पहले कंटेंट राइटिंग से पैसा मिल जाता था, अब कंटेंट भी एआई लिख देगा। पहले डेटा एंट्री से घर चलता था, अब वह भी मशीन कर देगी। तो फिर युवा क्या सीखे? यह सबसे बड़ा सवाल है। जवाब है कि युवाओं को अब एआई को चलाना सीखना होगा। एआई से लड़ना नहीं, बल्कि एआई के साथ काम करना सीखना होगा। जो युवा एआई टूल्स को समझेगा, वही आगे बढ़ेगा। जो नहीं समझेगा, वह रोजगार की दौड़ में पीछे रह जाएगा।

सरकारों को भी इस बारे में सोचना होगा। केवल डिग्री बांटने से काम नहीं चलेगा, स्किल पर ध्यान देना होगा। स्कूल-कॉलेजों में एआई की पढ़ाई जरूरी करनी होगी। युवाओं को बताया जाना चाहिए कि आने वाले समय में कौन-सी नौकरियां बचेंगी और कौन-सी खत्म होंगी। जैसे प्रॉम्प्ट इंजीनियरिंग, एआई ट्रेनर, एआई एथिक्स और डेटा सिक्योरिटी जैसी नई नौकरियां आएंगी, लेकिन उसके लिए तैयारी आज से करनी होगी। यदि हमने आज तैयारी नहीं की तो कल बहुत देर हो जाएगी और हमारे लाखों युवा बेरोजगार हो जाएंगे।

एआई को रोका नहीं जा सकता। यह आएगा और तेजी से आएगा। यह हमारी नौकरियां खाएगा भी और नई नौकरियां बनाएगा भी। लेकिन सवाल यह है कि क्या हम उस बदलाव के लिए तैयार हैं? क्या हमने अपने बच्चों को वह हुनर दिया है, जो मशीन नहीं कर सकती, जैसे इंसानी संवेदना, क्रिएटिविटी, लीडरशिप और टीमवर्क? यदि हमने यह हुनर दिया तो मशीन हमें हरा नहीं पाएगी। यदि नहीं दिया तो चार साल में 90 लाख का आंकड़ा सिर्फ ट्रेलर है, पूरी फिल्म तो 2030 तक आएगी, जब 1.8 प्रतिशत लोगों की नौकरी पर सच में खतरा होगा। इसलिए डरने से नहीं, सीखने से काम चलेगा। एआई से भागिए मत, एआई को अपनाइए। तभी यह नौकरी खाने वाला नहीं, बल्कि नौकरी देने वाला बनेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

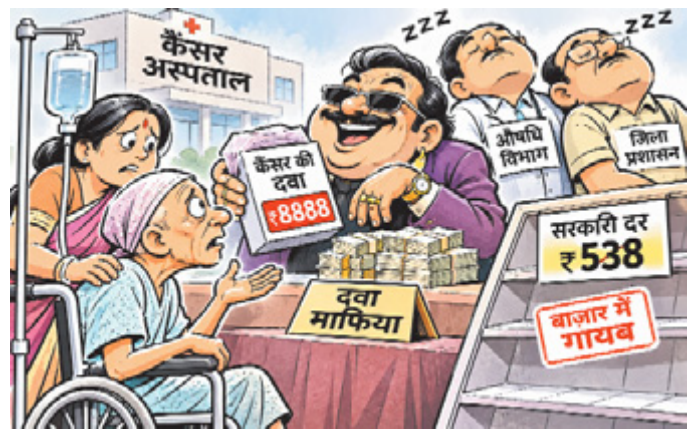
सरकार की मंशा अच्छी, पर नियत में खोट, दवा माफिया से हार क्यों रही सरकार

538 की दवा 8888 रुपये में बिके तो मंशा पर सवाल उठेंगे ही। कौन है जिम्मेदार, जो 90 प्रतिशत सस्ती दवा को बाजार से गायब होने दे रहा है? नियंत्रण का जिम्मेदार कौन, औषधि विभाग या जिला प्रशासन या दोनों की मिलीभगत? माफिया पर लगाम नहीं तो सस्ती दवा का ऐलान सिर्फ छलावा है।

भोपाल। कैंसर का इलाज सस्ता करने के सरकारी दावों के बावजूद मरीजों की जेब पर बोझ कम नहीं हो रहा है। सरकार ने जिन कैंसर की दवाओं की कीमतें कम की हैं, वे ही बाजार से गायब हैं। सरकारी खरीद में 538 रुपये का मिलने वाला इंजेक्शन बाजार में 8888 रुपये में बिक रहा है। 2500 रुपये की सरकारी दर वाली दवा के लिए मरीज को 16500 रुपये तक चुकाने पड़ रहे हैं। सस्ती दवा की तलाश में परिजन मेडिकल स्टोर के चक्कर काट रहे हैं। निजी अस्पतालों में बाहर से दवा लाने की अनुमति नहीं मिलने से उनकी मुश्किलें और बढ़ गई हैं। ये आंकड़े सरकार की मंशा पर सीधे सवाल खड़े करते हैं। मंशा अच्छी है, लेकिन नियंत्रण नहीं है तो ऐसी मंशा का क्या मतलब?

केंद्र और राज्य सरकार दोनों ने दावा किया कि कैंसर जैसी गंभीर बीमारी की दवाएं 90 प्रतिशत तक सस्ती कर दी गई हैं, लेकिन हकीकत यह है कि सस्ती दवाएं बाजार से अचानक गायब हो गई हैं। भारी कीमत चुकाने पर वही दवाएं तुरंत उपलब्ध हैं, लेकिन कम कीमत पर नहीं। यह कैसे हो सकता है कि एक ही दवा एक ही शहर में एक जगह उपलब्ध नहीं है और दूसरी जगह दस गुना कीमत पर तुरंत मिल रही है? आशंका है कि कृत्रिम कमी पैदा की जा रही है। दवा माफिया सस्ती दवाओं का स्टॉक दबाकर बैठा है और महंगी दवाएं बेचकर मुनाफा कमा रहा है। सरकार की मंशा मरीज को राहत देने की थी, लेकिन माफिया की मंशा उसे लूटने की है और इस लड़ाई में माफिया जीतता नजर आ रहा है।

अब सवाल है कि दवा माफिया पर नियंत्रण की जिम्मेदारी किसकी है? पहला जिम्मेदार औषधि नियंत्रण विभाग है। दवाओं की कीमत, गुणवत्ता और उपलब्धता पर निगरानी रखना इसी विभाग का काम है। उसे मेडिकल स्टोर पर जाकर बिल और स्टॉक रजिस्टर की जांच करनी चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि जन औषधि केंद्रों पर कैंसर की दवाएं उपलब्ध हैं या नहीं। लेकिन विभाग की कार्रवाई कागजी खानापूर्ति तक सीमित नजर आती है। दूसरा जिम्मेदार जिला प्रशासन है। कलेक्टर औषधि निरीक्षकों के साथ संयुक्त छापेमारी कर सकते हैं, लेकिन दवा दुकानों की नियमित जांच होती दिखाई नहीं देती। तीसरा जिम्मेदार स्वास्थ्य विभाग है, जो निजी अस्पतालों को बाहर से सस्ती दवाएं स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर पा रहा है। अस्पतालों की अपनी फार्मेसी से महंगी दवाएं खरीदने की मजबूरी मरीजों की परेशानी बढ़ा रही है।



सरकार की मंशा पर सवाल इसलिए भी उठते हैं कि वह बताती है कि उसने 538 रुपये में इंजेक्शन खरीदा, लेकिन यह नहीं बताती कि वह इंजेक्शन मरीज तक भी 538 रुपये में पहुंचा या नहीं। सरकारी अस्पताल में दवा नहीं मिलती, जन औषधि केंद्र पर भी उपलब्ध नहीं होती और अंतत: मरीज को निजी दुकान से 8888 रुपये में खरीदनी पड़ती है। ऐसे में सस्ती खरीद का लाभ किसे मिला? सरकार को या मरीज को? दवा माफिया का खेल भी समझना जरूरी है। एक ही दवा अलग-अलग कंपनियां अलग-अलग ब्रांड नाम से बेचती हैं और उनकी कीमतों में बड़ा अंतर होता है। कम कीमत वाले ब्रांड की आपूर्ति नहीं होने पर महंगे ब्रांड का विकल्प मरीज के सामने रखा जाता है। डॉक्टरों द्वारा महंगे ब्रांड लिखने और मेडिकल स्टोर पर उन्हीं दवाओं की उपलब्धता से मरीज की मुश्किलें बढ़ती हैं। इस पूरे चक्र पर औषधि विभाग की निगरानी जरूरी है। सरकार को सबसे पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि उसकी मंशा केवल दवा की कीमत घटाने तक सीमित न रहे, बल्कि सस्ती दवा मरीज तक पहुंचे। हर जिले में औषधि विभाग को नियमित औचक जांच करनी चाहिए। बिल और स्टॉक का मिलान हो तथा अनियमितता मिलने पर सख्त कार्रवाई की जाए। जिला प्रशासन निजी कैंसर अस्पतालों की फार्मेसी की नियमित जांच करे और बाहर से सस्ती दवा लाने पर रोक लगाने की शिकायतों पर कार्रवाई करे। केंद्र और राज्य सरकार को साझा पोर्टल बनाना चाहिए, जहां कैंसर की दवाओं की सरकारी और बाजार दर उपलब्ध हों तथा मरीज शिकायत दर्ज करा सकें। जन औषधि केंद्रों पर कैंसर की जरूरी दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित होनी चाहिए। सरकार ने कानून और कीमतों में राहत का प्रावधान तो कर दिया, लेकिन उसका लाभ मरीज तक पहुंचाने की व्यवस्था कमजोर है। यदि सच में कैंसर के मरीजों को राहत देनी है तो दवा माफिया पर सख्ती करनी होगी। अन्यथा 90 प्रतिशत सस्ती दवा का दावा केवल घोषणा बनकर रह जाएगा और गरीब मरीज 2500 रुपये की दवा के लिए 16500 रुपये चुकाने को मजबूर रहेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)